इकाई 4 कथा का स्वरूप एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कथा का अर्थ, परिभाषा।

4.2.1 दार्शनिक स्रोतों में कथा की अवधारणा।

4.2.2 साहित्यिक स्रोतों में कथा की संकल्पना।

4.2.3 कथा का प्रकार एवं अधिकारी-

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 अभ्यास-प्रश्नों की उत्तरमाला

4.6 सन्दर्भ-ग्रन्थ

4.7 बोध-प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में कथा के स्वरूप और प्रकार का अध्ययन कर लेने के बाद आप सभी-

- भारतीय-दर्शन के सम्प्रदाय पर संक्षिप्त परिचय दे सकेंगे।
- कथा का अर्थ और उसको परिभाषित कर सकेंगे।
- दार्शनिक स्रोतों में कथा का उल्लेख करने में समर्थ हो सकेंगे।
- साहित्यिक स्रोतों में कथा का विवेचन करने में समर्थ हो सकेंगे।
- कथा के प्रकार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखने में समर्थ हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारतीय ज्ञानपरम्परा में ज्ञान प्राप्ति के साधनों विशेषतः श्रवण विधि की प्रणाली पर चर्चा करेंगे। जैसा कि हम जानते है भारतीय ज्ञानपरम्परा लिखित ज्ञान परम्परा से अधिक वाचिक परम्परा है। इसलिये भारतीय ज्ञान परम्परा की श्रुति परम्परा भी कहा जाता है। भारतीय ज्ञान सृष्टि के आदि से वर्तमान तक इसी प्रणाली से निरन्तर प्रवाहमान है।

किसी भी सभ्यता का विकास करके परम्पराओं के ऊपर आश्रित होता है इसी तरह हमारी भारतीय हिन्दू सभ्यता विभिन्न परम्पराओं के द्वारा विकसित होती आयी है लेकिन इन परम्पराओं में सबसे प्रमुख ज्ञानपरम्परा है, इसमे आत्मा, ईश्वर, सृष्टि, आदि के विषय में बहुत ही गहनरूप से तात्त्विक विचार किया गया है।

भारतीय ज्ञानपरम्परा गुरूशिष्य परम्परा के द्वारा प्रवाहित होती है। गुरूशिष्य परम्परा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परम्परा है जिसके अन्तर्गत शिष्य कए गुरू के सानिध्य में रहकर ज्ञान प्राप्त करता है। भारतीय समाज में पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) के आधार पर एक व्यक्ति का जीवन संचालित होता है तथा जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष बताया गया है। एक व्यक्ति के मानव योनि में जन्म लेने से उसे यह अवसर प्राप्त होता है कि वह मोक्ष पाने के लिये प्रयत्न करें।

वेदान्त दर्शन में जीवन के परम पुरूषार्थ मोक्ष को पाने के लिये आत्मज्ञान यानि ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक बताया गया है। ज्ञान की प्राप्ति हेतु साधन चतुष्टय से युक्त होकर शुरू के सानिध्य में रहकर वेदान्त की शिक्षा लेता है। ज्ञान प्राप्ति की 3 प्रणाली श्रवण, मनन, निविध्यासन का अनुसरण करता है। श्रवण प्रणाली के अन्तर्गत 6 लिंगों के माध्यम से साधक कैसे मौक्ष की ओर अग्रसर होता है, उसकी चर्चा हम इस इकाई में करेंगे।

4.2 कथा का अर्थ, परिभाषा

कथा के स्वरूप का प्रारम्भ वैदिक-काल से होता है। वेद जिनके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आते हैं। इनमें कथाओं का विस्तृत स्वरूप देखने को मिलता है। वेदों में प्रथम वेद ऋग्वेद में अनेक संवाद-सूक्त देखने को मिलते हैं। जिनमें प्रमुख रूप से सूक्त हैं- पुरूरवा-उर्वशी संवादसूक्त, नदी-विश्वामित्र संवादसूक्त, सरमा-पणि संवादसूक्त, यम-यमी संवादसूक्त। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी संवाद की विस्तृत परम्परा दिखायी देती है।

कथा का अर्थ, परिभाषा-

कथा का अर्थ 'शास्त्रार्थ' है। शास्त्रार्थ शब्द का प्रयोग शास्त्र-चर्चा अर्थ में रूढ हो गया है। कथा को तीन रूपों- वाद, जल्प, वितण्डा, इन तीनों का प्रयोजन शास्त्रों के अर्थ को स्पष्ट करना है। इसलिये तत्त्वनिर्णयकारियों द्वारा इन तीनों कथाओं का सम्मिलित रूप 'शास्त्रार्थ' समझा जाने लगा।

आचार्य उदयन कहते हैं-

'ननु शास्त्रार्थ प्रयोजनव्युत्पादनावसरे प्रमाणम् अर्थवदिति कुछ:? न हि प्रमाणं शास्त्रार्थ: अपितु न्याय:।' (न्यायवार्तिक परिभाषा 1/1/1)

अर्थात् प्रमाण तत्त्वनिर्णय पर जब तक नहीं पहुंचता तब तक वह शास्त्रार्थ नहीं है, अपितु न्याय है तत्त्वनिर्णय करने वाला शब्द प्रमाण शास्त्रार्थ का साधन है। खण्डन-मण्डन परम्परा में तत्त्वनिर्णय कराने वाला शब्द प्रमाण शास्त्रार्थ निर्णय का साधन है। खण्डन-मण्डन की परम्परा में तत्त्वनिर्णय रूप शास्त्रार्थ की स्थापना होती है। इसलिये लक्षण से शास्त्रार्थ शब्द का प्रयोगशास्त्र के साधन (युक्ति प्रत्युक्ति प्रदर्शन) में होने लगा।

वाद, जल्प, वितण्डा जिनकी चर्चा अभी की गयी है। उन तीनों का सामान्य नाम है- कथा। कथा का लक्षण है पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष का प्रतिपादन करने के लिये अनेक वक्तत्यों के द्वारा प्रयुक्त होने वाला वाक्यसमूह।

4.2.1 दार्शनिक स्रोतों में कथा की अवधारणा

भारतीय दार्शनिक परम्परा का मूल स्रोत उपनिषदों में भी कथा का स्वरूप देखने को मिलता है-

1) **छान्दोग्य-उपनिषद्** में आत्म-जिज्ञासा की भावना जब उत्पन्न होती है। तब वहां पर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्योपनिषद् 3/14/1) विषय को लेकर के आत्म-जिज्ञासा की भावना उत्पन्न होती है और इसी आत्म-जिज्ञासा की शांति के लिए तत्त्वज्ञान के लिये शास्त्रार्थ प्रणाली का जन्म होता है न्याय-दर्शन में इसकी विस्तृत परम्परा देखने को मिलती है।

   तत्त्व-ज्ञान रूप महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्राच्य मनीषियों ने तीन उपाय बतलायें हैं- (1)प्रस्तुत विषय का स्वाध्याय अर्थात् श्रवण (2) चुने गये विषयों का मनन और (3) मनन के बाद उन विषयों का निरन्तर चिन्तन करते रहना।

2) **बृहदारण्यक-उपनिषद्** में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को परमतत्त्व आत्मा की अपरोक्षानुभूति के लिये संवाद द्वारा प्रोत्साहित किया-

   आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि!(बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/5)

   बृहदारण्यक-उपनिषद के तृतीय अध्याय में जनक की सभा में याज्ञवल्क्य-अश्वल-संवाद, याज्ञवल्क्य-आर्तभाग-संवाद, याज्ञवल्क्य-लाह्यायनि- भुज्यु-संवाद, याज्ञवल्क्य-चाक्रायण-उषस्त-संवाद, याज्ञवल्क्य-कहोल-संवाद, याज्ञवल्क्य-गार्गी-संवाद, याज्ञवल्क्य-आरुणि-उद्दालक-संवाद,याज्ञवल्क्य-शाकल्य-संवाद, शास्त्रार्थ की प्रश्न-प्रतिप्रश्न परम्परा के दर्शन होते हैं। याज्ञवल्क्य के द्वारा गार्गी को सचेत करना स्पष्ट दिखाई देता है-

   'स होवाच गार्गि मातिप्राक्षी:! मा ते मूर्धा व्यपप्तद् अनतिप्रश्न्यां वै देवताम् अतिपृच्छति गार्गि माति प्राक्षीरिति।' (बृहदारण्यक -उपनिषद् 3/6/1)

   अर्थात् हे गार्गि!अतिप्रश्न मत कर तेरा मस्तक न गिर जाये। तूझे जिसके विषय में अतिप्रश्न नहीं करना चाहिये उस देवता के विषय में प्रश्न कर रही है।

   याज्ञवल्क्य के द्वारा इस प्रकार सावधान किये जाने पर गार्गी का मौन होना वाद कथा को तत्त्वनिर्णय तक ले जा रहा है।

   इसी प्रकार याज्ञवल्क्य-शाक्ल्य-संवाद में याज्ञवल्क्य ने शाक्ल्य के प्रश्नों के सही उत्तर दे दिये किन्तु जब उन्होंने शाक्ल्य से शर्त के साथ एक प्रश्न किया तो वह उत्तर न दे सका। उसके बाद अन्य ब्राह्मणों से भी उन्होंने प्रश्न किये ब्राह्मणों का साहस न उनसे प्रश्न करने का हुआ न उत्तर देने का। तब उपसंहार करते हुये याज्ञवल्क्य इस तत्त्वनिर्णय पर पहुंचे-

   'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातु: परायणं तिष्ठमानस्य तद्विद इति।' (बृहदारण्यक-उपनिषद् 3/9/28)

   अर्थात् विज्ञान आनन्द ब्रह्म है। वह धनदाता (कर्म करने वाले यजमान) की परम गति है और ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता का भी परम आश्रय है।

3) **कठोपनिषद्-** यजुर्वेद की कठ-शाखा से सम्बन्धित यह उपनिषद् कथा का अच्छा संकेत करता है। वाजश्रवा 'विश्वजित्' नामक यज्ञ करते हैं और अपना सबकुछ दान करने का संकल्प लेते हैं यह यज्ञ ही ऐसा होता है कि इसमें सर्वस्व दान कर दिया जाता है। परन्तु दान करते समय राजा वाजश्रवा को अपने पुत्र नचिकेता के प्रति मोह उत्पन्न हो जाता है कि मैं सब दान कर दूंगा तो मेरा पुत्र क्या करेगा और वह ऋषियों को दूध देने में असमर्थ गायों का दान करने लगते हैं, अनुपयोगी वस्तुओं का दान करने लगते हैं। तब पिता को अधर्म से बचाने के लिये नचिकेता पिता पूछते हैं, पिताजी आप मुझे किसे दान में देंगे ? इस प्रकार कई बार प्रश्न पूछने पर क्रोध से उन्होंने कहा- जाओ मैं तुम्हें यमराज को देता हूं। इसके बाद नचिकेता यमराज की खोज में निकल पड़ते हैं और तीन दिन, तीन रात्रि तक वह यमराज की प्रतीक्षा करते हैं। यमराज अपने द्वार पर बालक नचिकेता को देखकर के प्रसन्न होते हैं और उनसे तीन वरदान मांगने को कहते हैं। इस प्रकार पहले वर के रूप- में तो नाचकेता कहते हैं कि मेरे पिता शांत संकल्प वाले हों, मेरे वापस जाने पर मुझे पहचान ले, मुझसे पूर्व सामान बातचीत करें, मुझे प्रेत न समझे। दूसरे वरदान में- स्वर्ग को गये हुये मनुष्य किस प्रकार अमृततत्त्व को प्राप्त करते हैं ? और यह अग्नि तत्त्व क्या है? तीसरे वरदान में- वह आत्मा के विषय में जानना चाहते हैं। यमराज एक-एक प्रश्न का समाधान करते हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण कठोपनिषद् में कथा का स्वरूप दिखाई देता है।

भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है। वह है- आस्तिक और नास्तिक दर्शन। भारतीय विचारधारा में आस्तिक उसे कहा जाता है जो वेद की प्रामाणिकता में विश्वास करता है और नास्तिक उसे कहा जाता है जो वेद को प्रमाण नहीं मानता है। इस दृष्टिकोण से भारतीय दर्शन में 6 दर्शनों को आस्तिक दर्शन कहा जाता है। ये 6 दर्शन हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त। इन्हें षड्दर्शन भी कहते हैं। नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत चार्वाक, जैन और बौद्ध को रखा जाता है। इस प्रकार नास्तिक दर्शन 3 हैं। इनके नास्तिक कहलाने का मूल कारण है कि यह वेद को प्रमाण नहीं मानते हैं।

नास्तिक और आस्तिक शब्दों का प्रयोग एक दूसरे अर्थ में भी होता है। नास्तिक उसे कहा जाता है जो ईश्वर का निषेध करता है और आस्तिक उसे कहा जाता है जो ईश्वर में आस्था रखता है। इस प्रकार से आस्तिक दर्शन ईश्वरवादी और नास्तिक दर्शन अनीश्वरवादी है।

आयुर्वेद के महान् ग्रन्थ चरक संहिता में कथा को 'सम्भाषा' कहा गया है और उसके दो भेद बताये गये हैं- 'सन्धाय सम्भाषा' और 'विगृह्य सम्भाषा'। 'सन्धाय सम्भाषा' का अर्थ है सन्धि से- सौमनस्य से किया जाने वाला विचार-विनिमय। यह न्यायशास्त्र की 'वाद' कथा है। 'विगृह्य सम्भाषा' का अर्थ है विग्रह-संघर्ष-जय-पराजय की भावना से किया जाने वाला विचार-विनिमय। इसमें न्यायशास्त्र में वर्णित जल्प और वितण्डा का समावेश होता है।

जैन-दर्शन में कथा का एक ही प्रकार स्वीकृत है और वह है 'वाद'। जल्प और वितण्डा को कथा न कहकर कथाभास कहा गया है और उसे त्याज्य माना गया है। जैनों की अनेक कथायें हैं। सिद्धार्थ की **उपमितिभवप्रपञ्च** कथा में आत्मा का वर्णन है। मेरुतुंग ने **प्रबन्धचिन्तामणि** की रचना की जिसमें पांच प्रकाश हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, विद्वानों, कवियों का वृतान्त हैं। जैन कवि राजशेखर ने **प्रबन्धकोश** लिखा। जिसमें 24 प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी है।

बौद्ध-दर्शन के पूर्ववर्ती अनेक तार्किकों ने तो कथा के उपर्युक्त तीनों भेद माने थे पर पश्चाद्वर्ती विद्वानों ने जल्प, वितण्डा को कथा के क्षेत्र से पृथक् कर जैन-आचार्यों के समान 'वाद' मात्र को

ही कथा के रूप में मान्यता प्रदान की है। बौद्ध लोक कथाओं में प्राचीनतम ग्रन्थ **अवदान-शतक** है। जिसमें अशोक के पुत्र कुणाल की करुण कथा का वर्णन है। इसमें उसकी विमाता उसके आंख निकालवा लेती है। आर्यसूर रचित **जातकमाला** में बोधिसत्त्व की 34 कथायें हैं।

भारतीय-दर्शन के अतिरिक्त यूरोपीय दर्शन की भी एक परम्परा हमारे सामने दिखायी देती है। वहां एक दर्शन के नष्ट हो जाने के बाद प्रायः दूसरे दर्शन का विकास होता हुआ दिखायी देता है। सुकरात के बाद प्लेटो का आगमन हुआ, डेकार्ट के दर्शन के बाद स्पिनोजा का दर्शन विकसित हुआ। बाद के दर्शन ने अपने पूर्व के दर्शन की आलोचना की है। स्पिनोजा का दर्शन डेकार्ट की कमियों को दूर करने का प्रयास है। बर्कले का दर्शन लॉक की कमियों को दूर करने का प्रयास कहा जाता है। स्पिनोजा का दर्शन विकसित हुआ नहीं कि डेकार्ट का दर्शन लुप्त हो गया ऐसे ही बर्कले का दर्शन जब विकसित हुआ तो धीरे-धीरे लॉक का दर्शन समाप्त होता गया। इस प्रकार हम यूरोप में देखते हैं कि वहां एक दर्शन के समाप्त होने पर ही दूसरा दर्शन प्रारम्भ होता है जबकि भारतीय दर्शन में ऐसी परम्परा नहीं दिखायी देती। भारतीय दर्शन कई दर्शनों को एक साथ लेकर के चलता है यहां सभी दर्शन एक साथ जीवित रहते हैं और भारत में दर्शन को जीवन का एक अंग माना गया है। यहां पीढ़ी दर पीढ़ी प्रत्येक दर्शन का विकास होता चला आ रहा है या उसका संरक्षण होता रहता है।

भारतीय दर्शन के आस्तिक सम्प्रदायों का विकास सूत्र-साहित्य के द्वारा हुआ है। प्राचीनकाल में लिखने की परिपाटी नहीं थी दार्शनिक विचारों को अधिकांश तथा मौखिक रूप से ही जाना जाता था। समय के विकास के साथ दार्शनिक समस्याओं का संक्षिप्त रूप सूत्रों में बांधा गया। इस प्रकार दर्शन के प्रणेता ने सूत्र-साहित्य की रचना की, जैसे- न्याय-दर्शन का ज्ञान गौतम के न्यायसूत्र से, वैशेषिक का ज्ञान कणाद के वैशेषिकसूत्र से, शंकर का ज्ञान कपिल के सांख्यसूत्र से तथा योग का ज्ञान पतञ्जलि के योगसूत्र से मीमांसा का ज्ञान जैमिनी के मीमांसासूत्र से और वेदान्त का ज्ञान बादरायण के ब्रह्मसूत्र द्वारा प्राप्त होता है।

न्याय-दर्शन में विस्तार के साथ 16 पदार्थों का वर्णन किया गया है। आइये हम सब इन 16 पदार्थों का अध्ययन करते हैं। वात्स्यायन ने परमन्याय कहकर वाद, जल्प, वितण्डारूप विचारों का मूल एवं तत्त्वनिर्णय का आधार बतलाया है, जैसे-

साधनीयार्थस्य यावति शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते, तस्य पञ्चावयवाः प्रतिज्ञादयः समूहमपेक्ष्यावयवा उच्यन्ते। तेषु प्रमाणसमवायः। आगमः प्रतिज्ञा, हेतुरनुमानम्, उदाहरणं प्रत्यक्षम्, उपमानमुपमानम्, सर्वषामेकार्थसमवाये सामथ्-र्यप्रदर्शनं निगमनमिति। सोऽयं परमो न्याय इति। एतेन वादजल्पवितण्डाः प्रवर्तन्ते, नातोऽन्यथेति। तदाश्रया च तत्त्वव्यवस्था।(न्यायभाष्य 1सूत्र)

जिस अर्थ का साधन करना अभीष्ट है उसकी सिद्धि जिस वाक्यसमूह का प्रयोग करने पर सम्पन्न होती है, प्रतिज्ञा आदि पांच वाक्य उस वाक्यसमूह- न्यायवाक्य के अवयव कहे जाते हैं। उन वाक्य में सभी प्रमाणों का समावेश होता है। जैसे 'प्रतिज्ञा' में शब्द प्रमाण का, 'हेतु' में अनुमान प्रमाण का, 'उदाहरण' में प्रत्यक्ष प्रमाण का और 'उपनयन' में उपमान प्रमाण का। 'निगमन' से एक अर्थ के साधन में सभी प्रमाणों के योगदान का प्रदर्शन होता है। यह शब्दसमूह 'परमन्याय' है। इसी के द्वारा वाद, जल्प, वितण्डात्मक कथायें की जाती हैं। इसके बिना वाद आदि कथायें सम्भव ही नहीं हो सकतीं। तत्त्वनिर्णय भी इसी पर आश्रित होता है।

न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम मुनि ने 'नि:श्रेयस-मोक्ष' को ही उस शास्त्र का प्रयोजन माना है और उसे प्रमाण, प्रमेय आदि 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से साध्य बताया है-

प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभासच्छल, जाति, निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्नि:श्रेयसाधिगम:।

(न्यायदर्शन 1/1/1)

आइये अब हम इन 16 पदार्थों के विषय में संक्षिप्त रूप से ज्ञान प्राप्त करते हैं-

1) प्रमाण-ज्ञान के साधन को प्रमाण कहा जाता है। न्याय के मातानुसार प्रमाण चार हैं, वह है- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान।

2) प्रमेय-ज्ञान के विषय को प्रमेय कहा जाता है। प्रमेय के अन्दर ऐसे विषयों का उल्लेख है जिनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

3) संशय- मन की अनिश्चित अवस्था को जिसमें मन के सामने दो या दो से अधिक विकल्प उपस्थित होते हैं, संशय कहा जाता है। इस अवस्था में विषय का विशेष ज्ञान नहीं होता है।

4) प्रयोजन-जिस वस्तु की प्राप्ति के लिये जो कार्य किया जाता है उसे प्रयोजन कहा जाता है।

5) दृष्टान्त-ज्ञान के लिये अनुभव किये हुये उदाहरण को दृष्टान्त कहा जाता है। उदाहरण- हमारे तर्क को सबल बनाता है।

6) सिद्धान्त- सिद्ध स्थापित सिद्धान्त को मानकर ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ना सिद्धान्त कहा जाता है।

7) अवयव- अनुमान के अवयव को अवयव कहा जाता है अवयव के अनुमान के अवयव पांच हैं-प्रतिज्ञा हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन।

8) तर्क-यदि किसी बात को प्रमाणित करना है तब उसके विपरीत शब्द को सही मानकर उसकी प्रामाणिकता को दिखलाना तर्क कहा जाता है।

9) निर्णय-निश्चित ज्ञान को निर्णय कहा जाता है। निर्णय को अपनाने के लिये संशय का त्याग करना आवश्यक हो जाता है।

10) वाद-वाद उस विचार को कहा जाता है जिसमें सभी परमाणु और तर्कों की सहायता से विपक्षी के निष्कर्ष को काटने का प्रयास किया जाता है।

11) जल्प-जीतने की अभिलाषा से तर्क करना जल्प कहा जाता है। इसमें वादी और प्रतिवादी का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करने के बजाय विजय को शिरोधार्य करना होता है।

12) वितण्डा-यह भी केवल जीतने के उद्देश्य से अपनाया जाता है। इसमें प्रतिवादी के विचारों को काटने की चेष्टा की जाती है। इसमें वादी, प्रतिवादी की बात सुनता है और न ही अपनी बात कहता है, यह अलग ही विषय को प्रस्तुत करता है उसे भी वितण्डा कहते हैं।

13) हेत्वाभास- प्रत्येक अनुमान हेतु पर निर्भर रहता है। यदि हेतु में कोई दोष हो तो अनुमान भी दूषित हो जाता है। हेतु के दोष को हेत्वाभास कहा जाता है। साधारणतया अनुमान के दोष को हेत्वाभास कहते हैं।

14) छल-किसी व्यक्ति की कही हुयी बात का अर्थ बदलकर उसमें दोष संकेत करना छल कहा जाता है। उदाहरण के रूप में यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि रमेश के पास नव

कंबल है, उस व्यक्ति के कहने का अर्थ है कि रमेश के पास एक नया कंबल है अब प्रतिवादी इसके विपरीत 'नव' शब्द का अर्थ नया न लेकर नौ संख्या समझ लेता है। तब यह छल कहा जायेगा। छल तीन प्रकार के होते हैं- (1) वाक् छल (2) सामान्य छल (3) उपचार छल।

15) जाति-जाति भी छल की तरह एक प्रकार का दुष्ट उत्तर है। समानता और असमानता के आधार पर दोष दिखलाया जाता है, वह जाति है। यह एक प्रकार का विपरीत उत्तर है।

16) निग्रह स्थान- वाद-विवाद के मध्य में जब वादी ऐसे स्थान पर पहुंच जाता है जहां उसे हार माननी पड़ती है तो वह निग्रह स्थान कहलाता है। दूसरे शब्दों में पराजय के स्थान को निग्रह स्थान कहा जाता है। निग्रह स्थान के दो कारण हैं। ये है- गलत ज्ञान और अज्ञान।

इन 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से नि:श्रेयस-मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह न्याय-दर्शन का पहला सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि प्रमाण आदि 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रमाण आदि पदार्थों का तत्त्वज्ञान सम्यक्ज्ञान यथार्थज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक कि इनका प्रमाण आदि समस्त पदार्थों का उद्देश्य लक्षण और परीक्षा न कर ली जाये। जैसा कि भाष्यकार न्यायदर्शन के भाष्यकर्ता वात्स्यायन ने कहा है कि इस शास्त्र की न्यायशास्त्र की प्रवृत्ति, रचना, उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा इन तीनों रूपों में है अर्थात् शास्त्र के तीन कार्य हैं- उद्देश्य करना लक्षण बताना लक्षण के युक्ततत्त्व, अयुक्ततत्त्व की परीक्षा करना।

यहां तक आप सभी ने न्याय-दर्शन के स्वरूप और न्याय-दर्शन में प्रतिपादित 16 पदार्थ का विस्तृत अध्ययन किया है। आइये अब हम अपने पढ़े हुये विषयों को अभ्यास-प्रश्नों के माध्यम से जांचने का प्रयास करते हैं।

4.2.2 साहित्यिक स्रोतों में कथा की संकल्पना

संस्कृत-साहित्य में देखते हैं तो लोक कथाओं में पञ्चतन्त्र की बहुत सारी कथायें लोक-कथाओं के रूप में दिखायी देती हैं। हितोपदेश, बृहद्श्लोक संग्रह, बृहत्कथामंजरी, बेताल पंचविंशति कथा आदि, कथाओं का उद्गम स्थान हैं।

1) **पञ्चतन्त्र**-विष्णु शर्मा द्वारा रचित पञ्चतन्त्र में पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों को पात्र रूप में रखकर कथायें कहीं गयीं हैं। इन कथाओं द्वारा नीतिगत, धर्मगत अनेक उपदेश दिये गये हैं। आचार और कौशल का मुख्य स्रोत पञ्चतन्त्र है। शिक्षा से दूर भगाने वाले राजकुमारों को कथा के द्वारा उपदेश देते हुये शिक्षा के प्रति उन्मुख किया जाता है। यहां कथा गद्य रूप में और नीतिगत शिक्षा श्लोक रूप में दिखायी देती है। पञ्चतन्त्र में पांच खण्ड हैं। इन खण्डों को तन्त्र कहते हैं। पांच खण्ड हैं- (1)मित्रभेद (2)मित्रसम्प्राप्ति (3)काकोलूकीय (4)लब्धप्रणाश (5)अपरीक्षितकारक। इनमें कुल 70 कथायें हैं। कुछ कथाओं के नाम- सियार और ढोल कथा, बगुला भगत और केकड़ा, हाथी गौरैया, गौरैया और बंदर, जैसे को तैसा, मूर्ख बगुला और नेवला, साधु और चूहा आदि कथायें हैं।

2) **हितोपदेश**-यह नारायण पण्डित द्वारा रचित है। इसमें 43 कथायें हैं। जिनमें 25 कथायें पञ्चतन्त्र से ली गयीं हैं। हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं- (1)मित्रलाभ (2) सुहृदभेद (3)विग्रह (4)सन्धि। इनमें अनेक रोचक और शिक्षाप्रद श्लोक आयें हैं, जैसे मूर्ख को उपदेश देने से उनका क्रोध बढ़ता है शान्त नहीं होता है-

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

3) **बृहत्कथा**- यह गुणाढ्य द्वारा रचित है। गुणाढ्य द्वारा पैशाची-भाषा में लिखी गयी कथा थी। मूल ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। गुणाढ्य ने लोक-जीवन में प्रचलित कथाओं का संकलन करके बृहत्कथा की रचना की। यह लोककथा नायक उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है और इसकी नायिका मदनमंजूषा पर आधारित है। बृहत्कथा को जानने के लिये बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर पढ़ना चाहिये।

4) **बृहत्कथामञ्जरी**-यह क्षेमेन्द्र द्वारा रचित है। इसमें 700 श्लोक हैं। इन्होंने महाभारत और रामायण के आधार पर बृहत्कथामञ्जरी लिखी। इस काव्यात्मक कथा में अनेक उपकथायें भी दी गयीं हैं।

5) **कथासरित्सागर**-इसमें 24000 श्लोक हैं। इसके लेखक पंडित सोमदेव थे। इस ग्रन्थ का विभाजन लम्बको और तरंगों में किया गया है। इसमें कश्मीर के विदूषकों और सामान्य जनों की कहानी भी जोड़ी गयी हैं। अन्धविश्वास, जादूगरी, शैवमत, बौद्धमत, कर्मवाद, शिवपूजा, मातृपूजा आदि कथायें हैं।

6) **वेतालपञ्चविंशतिका**-इसमें 25 कहानियां दी गयीं हैं। इसमें विक्रमसेन (विक्रमादित्य) की कथायें हैं। कोई सिद्ध पुरुष राजा को रत्नगर्भित फल देता है और उसकी सिद्धि में सहायता के लिये राजा को एक वृक्ष पर लटकते हुये शव को लाने के लिये कहता है। वह शव किसी वेताल के वश में है जो शव ले जाते समय राजा को चुप रहने को कहता है किन्तु वेताल विचित्र कथायें सुनाता है कि राजा को बोलना ही पड़ता है। वेताल के कठिन प्रश्नों का उत्तर राजा बुद्धिमत्ता से देता है इस प्रकार से इस कथा में बुद्धि की परीक्षा होती है।

7) **सिंहासनद्वात्रिंशिका (द्वात्रिंशत्पुतलिका)**- यह एक रोचक कथा संग्रह है। इस कथा संग्रह में 32 पुतलियां राजा भोज को 32 कहानियां सुनाती हैं। पृष्ठभूमि इस प्रकार है- राजा भोज भूमि में गड़े हुये विक्रमादित्य के सिंहासन को उखाड़ता है और उसे पर बैठना चाहता। किन्तु उसे सिंहासन में जड़ी हुयीं 32 पुतलियां एक-एक करके विक्रमादित्य के पराक्रम को सुनाती हैं और राजा भोज को आयोग के सिद्ध करके उस पर बैठने से रोकते हैं।

8) **शुकसप्तति**-इसमें 70 कहानियां हैं। इस कहानी को खाने वाला एक तोता होता है। मदनसेना नामक व्यापारी को कार्यवश विदेश जाना पड़ता है तो वह पत्नी के पास एक तोता छोड़ जाता है। इस प्रकार नववधू के सती धर्म से पथभ्रष्ट न हो तो तोता प्रत्येक रात्रि को एक-एक कहानी सुनाता है। इससे उस स्त्री का मन लगा रहता है जब 70वीं कथा सुनने की रात आने वाली रहती है तभी उसका पति आ जाता है। इस प्रकार इसमें वर्णित सभी कहानियां उपदेशप्रद, रोचक और सरल हैं।

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में अनेक कथायें प्रचलित हैं जो कथा के स्रोत के रूप में हमारे सामने दिखाई देती हैं।

4.2.3 कथा का प्रकार एवं अधिकारी।

क) कथा के प्रकार-

कथा के तीन प्रकार होते हैं- (1) वाद (2) जल्प (3) वितण्डा। अभी तक आप सभी ने कथा के स्वरूप के विषय में अध्ययन किया है। आइये हम सब कथाओं के इन तीनों प्रकारों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करते हैं।

1) **वाद**- वाद उसको कहते हैं जहां वादी-प्रतिवादी किसी विषय पर वाद प्रतिवाद इसलिये करते हैं जिससे तत्त्वज्ञान हो जाये। यहां वाद का उद्देश्य तत्त्वनिर्णय करना है। वाद का लक्षण करते हुये न्यायसूत्र कहते हैं-

'प्रमाण-तर्क-साधनोपालम्भ: सिद्धान्ताविरुद्ध: पञ्चावयवोपपन्न: पक्ष-प्रतिपक्षपरिग्रहो वाद:।' (न्यायसूत्र 1/2/1)

जहां प्रमाण और तर्क से स्वपक्ष की स्थापना और परपक्ष का निराकरण किया जाता है - ऐसा प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन इन अनुमान वाक्य के पांच अवयवों से युक्त सिद्धान्त से बिना विरोध का वाक्यसमूह 'वाद' है।

भाष्याकार वात्स्यायन के अनुसार-

'वाद: खलु नानाप्रवक्तृक: प्रत्यधिकरणसाधनोऽन्यतराधिकरणनिर्णयावसानो वाक्यसमूह:।' (न्यायसूत्र 1/1/1)

अर्थात् जिनमें अनेक वक्ता हों तथा उनके अपने-अपने विषय के साधक हेतु हों और दोनों में से किसी एक पक्ष में ही अन्त में निर्णय हो। ऐसे वाक्यसमूह वाद कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

न्यायवार्तिककार उद्योतकर के अनुसार-

'नायं कथा नियम:, अपितु विचारवस्तुनियम:।

यद् वस्तु विचार्यते तत् त्रेधा विचार्यते-वादो जल्पो वितण्डा।' (न्यायसूत्र 1/2/1)

इसी की व्याख्या करते हुये तात्पर्यटीकाकार वाचस्पति मिश्र कहते हैं-

नानाप्रववक्तृक-विचारविषया वाक्यसंदृब्धि: कथा। (न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका 1/2/1)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाना वक्ताओं के वाक्य का विस्तार वाद कथा है जहां विचारणीय विषय का विवेचन किया जाता है-

> विचारविषयो नाना प्रवक्तृको वाक्यविस्तर:।
> (तार्किक रक्षा-न्याय परिभाषा, पृष्ठ 239)।

2) **जल्प**- जहां वादी और प्रतिवादी विजय की इच्छा रख कर न्याय अनुकूल उक्ति-प्रत्युक्तिरूप वाक्य-समूह को प्रस्तुत करते हैं वह जल्प है-

यथोक्तोपपन्न: छलजाति-निग्रहस्थान-साधनोपालम्भो जल्प:। (न्यायसूत्र 1/2/3)

जल्प कथा में कुछ नियम होते हैं। उसमें वादी, प्रतिवादी और मध्यस्थ तीनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। मध्यस्थ निर्णायक का दायित्व निभाता है। इसलिये उसको सम्पूर्ण शास्त्रविद् होना चाहिये। पहले मध्यस्थ वादी और प्रतिवादी की

परीक्षा करता है कि दोनों प्रस्तावित विषय पर शास्त्रार्थ कर सकते हैं। प्रतिवादी का कर्तव्य वादी के पक्ष में प्रमाणपूर्वक दोष दिखाना है। वह तर्क की कसौटी पर उसे उतारेगा। वादी यदि अनुमान प्रस्तुत करेगा तो प्रतिवादी उसमें हेत्वाभास दिखायेगा। वादी के हेतु में हेत्वाभास लक्षण घटा देगा। तब वादी की पराजय हो जायेगी। किन्तु यदि प्रतिवादी, वादी के पक्ष को दूषित नहीं कर पायेगा तो उसकी पराजय होगी। वादी और प्रतिवादी का यह क्रम पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के रूप में चलता रहेगा। तब निर्णायक निष्पक्ष रूप में पराजय की घोषणा करेगा। इस प्रकार जल्प कथा विजिगीषा से अनुप्राणित है। इसमें जय लाभ के लिये वादी और प्रतिवादी तर्क प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार यहां पर स्पष्ट है कि एक विषयवस्तु को लेकर पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष में परस्पर चर्चा होती है और यह चर्चा वाद-विवाद के रूप में होती है और इसमें मुख्य उद्देश्य किसी तत्त्वनिर्णय पर न पहुंच करके बल्कि जीतने की इच्छा होती है। इसमें एक की पराजय और दूसरे की विजय इसका भाव निहित होता है।

3) **वितण्डा**-जहां अपने पक्ष की स्थापना न होकर केवल पूर्वपक्ष का खण्डन होता है। उसे भी वितण्डा कहा जाता है-

'स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा'

(न्यायसूत्र 1/2/3)।

यहां भी जल्प की ही भांति जय-पराजय की कामना होती है। अतः प्रतिज्ञा-हानि आदि निग्रहस्थान को अवकाश मिलता है। यद्यपि वितण्डा को निकृष्ट कोटि की कथा माना गया है। तथापि कहीं-कहीं इसका विशेष महत्त्व है, जैसे- खण्डनखण्डखाद्य में निर्विशेष ब्रह्म का बोध कराने के लिये वितण्डा का आश्रय लिया जाता है। क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म का प्रतिपादन निषेधात्मक रीति से ही सम्भव है।

वाद कथा में यदि कहीं हेत्वाभास अथवा अपसिद्धान्त हो जाये अर्थात् तत्त्वनिर्णय करता। यदि भ्रांतिवशात् अपसिद्धान्त कर दे तो बुभुत्सु उस पर प्रश्न कर सकता है। अन्यथा तत्त्वनिर्णय का उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा।

यहां वितण्डा का एक सामान्य अर्थ यह हम समझ सकते हैं कि यदि किसी वस्तु पर वादी और प्रतिवादी परस्पर वाद-विवाद करने के लिये होते हैं तो वहां जहां तत्त्वनिर्णय की भावना हो उसके अनुसार विषयवस्तु का वादी और प्रतिवादी उपस्थापना करें। तब वहां पर वादरूपी कथा होती है। लेकिन जहां पर विषयवस्तु को लेकर वादी और प्रतिवादी में परस्पर जीतने की इच्छा हो और दूसरे पक्ष को हराने की इच्छा हो वहां पर जल्परूपी कथा होती है। लेकिन जहां पर विषयवस्तु पर न तो वादी बात करे न प्रतिवादी बात करे कहने का तात्पर्य है कि उत्तरपक्ष पूर्वपक्ष की बात को सुने और न ही अपनी ही बात करे। वहां पर जब एक-दूसरे की बात को न सुनते हुये न अपनी बात कहता है, एक अन्य ही विषय का विवेचन प्रारम्भ कर देता है तो उसको कहते हैं कि यह तो वितण्डा कर रहा है। यदि हम 'ब्रह्म' विषयवस्तु को ले तो ब्रह्म विषयवस्तु को न तो पूर्वपक्ष की बात को सुनकर के उत्तरपक्ष अपने सिद्धान्त को दे रहा हो और ब्रह्म की विषय की चर्चा न करते हुये वह उत्तरपक्ष अन्य

ही किसी विषय की चर्चा करने लग जाये और वहां पर उच्च स्वर में बोलने लग जाये तब उसको कहते हैं कि यह अलग ही विषय पर चर्चा कर रहा है। यह अब वितण्डा कर रहा है। यह वितण्डारूपी कथा है।

ख) कथा के अधिकारी-

वाद, जल्प, वितण्डा इन तीनों कथाओं के अधिकारी कैसे होने चाहिये, यह भी एक विचारणीय विषय है। कथा का अधिकारी ऐसा होना चाहिये जो श्रवणपटु हो, बहरा या प्रमत्त न हो, सर्वजनसिद्ध वस्तु का अपलाप न करता हो, कथा के सभी व्यापारों में निपुण हो, कलह प्रिय न हो, जो तत्त्वनिर्णय की कामना रखता हो, जानबूझकर सत्य का अपलाप न करे, प्रकृत विषय में ही वाक्य का उपयोग करे, अवसर पर उत्तर करे, युक्तिसिद्ध तत्त्व को ग्रहण करे, वही वाद का अधिकारी है।

वादकथा गुरु और शिष्य के बीच होती है। जैसा कि न्यायवार्तिककार उद्योतकर ने कहा है-

तत्र गुर्वादिभि: सह वाद:। (न्यायवार्तिक 1/2/1)

किन्तु जल्प और वितण्डा के अंग के रूप में वादी नियम, प्रतिवादी नियम, सभापति नियम और मध्यस्थ नियम बताये गये हैं। वादी और प्रतिवादी कौन हो सकता है ? इसका निर्णय करना आवश्यक है। सभापति इसका निर्णय करता है। वादी और प्रतिवादी अपने वक्तव्य को मध्यस्थ के सामने रखते हैं।

जल्प और वितण्डा में नियमों का पालन करना आवश्यक होना चाहिये। इससे क्रोध व कलह की सम्भावना कम हो जाती है। महर्षि गौतम ने जल्प, वितण्डा को तत्त्वनिर्णय के संरक्षण में उपयोगी माना है-

तत्वाध्यवसाय-संरक्षणार्थं जल्पवितण्डे, बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत्।

(न्यायसूत्र 4/2/50)

अर्थात् जैसे कृषक खेत में बीज बोता है उसके अंकुरित होने पर गाय, भैंस आदि से उसको बचाने के लिये कांटे वाली डाल से खेत को घेरकर उन अंकुरों की रक्षा करता है, उसी प्रकार मुमुक्षु को अपने तत्त्वनिर्णय की संरक्षा के लिये जल्प, वितण्डा का सहारा लेना पड़ता है।

भाष्यकार वात्स्यायन ने वाद, जल्प, वितण्डा की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये कहा- शास्त्रों के तत्त्वों का श्रवण करने के उपरान्त जिसको तत्त्वज्ञान परिपक्व एवं दृढ़ नहीं हुआ है, वह व्यक्ति उसकी दृढ़ता के लिये गुरु के उपदेश में प्रवृत्त होता है। उसके समीप नास्तिक प्रतिपक्षी उसके विपरीत पक्ष का समर्थन करते हैं जिससे तक तो निश्चय में हानि होती है। अतः उस तत्त्व निश्चय की रक्षा के लिये मुमुक्षु को जल्प, वितण्डा को अपनाना पड़ता है। जिससे नास्तिकों का मत निराकृत हो जाता है। किन्तु यह कार्य धन लाभ और लोकप्रसिद्धि के लिये नहीं होना चाहिये-

तदेतद् विद्या परिपालनार्थं न लाभपूजाख्यात्पर्थम्।

(न्यायभाष्यकार 4/2/51)

यहां पर न्याय-दर्शन में कथा के स्वरूप का अध्ययन करने के लिये अधिकारी के विशेष नियम जो बताये गये हैं वह मात्र केवल कथा के स्वरूप का ही अध्ययन करने के लिये ही नहीं है, बल्कि किसी भी गम्भीर शास्त्र का अध्ययन करने के लिये गुरु की आवश्यकता होती है और उस शास्त्र के अध्ययन हेतु जो भी नियम अनुशासन होते हैं उसका पालन अधिकारी को अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि बिना नियमों और अनुशासन के अनुसार शास्त्र का अध्ययन या शास्त्र को ग्रहण कर पाना शास्त्र ज्ञान की अभिलाषा रखने वाले के लिये यह सम्भव नहीं हो सकता है कि वह विशुद्ध रूप से शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर सके।

इस प्रकार आप सभी यहां पर कथा के स्वरूप, कथा के प्रकार और कथा को ग्रहण करने का अधिकारी कौन हो सकता है, इस विषय पर विस्तृत अध्ययन कर लिया है। आइये अब हम अपने पढ़े हुये विषय को अभ्यास-प्रश्नों के माध्यम से जांचने का प्रयास करते हैं।

4.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी कथा के स्वरूप एवं प्रकार का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है। इस प्रकार यहां आप सभी ने देखा कि न्यायशास्त्र में कथा का विस्तार रूप से वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक-काल से ही कथा का प्रारम्भ हो चुका था। जिसका स्वरूप हमें संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों में स्पष्ट रूप से दिखायी देता है और इसी कथा का विस्तार आगे चलकर के दर्शन के क्षेत्र में न्याय-दर्शन में विस्तार से हुआ।

न्याय-दर्शन में कथा के तीन रूप जिस प्रकार बताये गये हैं उनमें वाद को उच्चकोटि की कथा, जल्प को मध्यकोटि की और वितण्डा को निकृष्टकोटि की कथा बतलाया गया है। लेकिन वर्तमान समय में यदि हम देखें तो हमें अपनी बात को या अपने मत को कभी-कभी सिद्ध करने के लिये वितण्डा का आश्रय लेना ही होता है। यह भाव हमें तब दिखायी देता है जब अन्य दर्शन विकसित होने लगे तब अपने धर्म और दर्शन को स्थापित रखने के लिये नास्तिकों के समक्ष वितण्डा का आश्रय लेते हुये विद्वानों ने वितण्डा का भी आश्रय लिया।

जैन-दर्शन ने इन तीनों में से केवल वादरूपी कथा को ही स्वीकार किया और जल्प और वितण्डा कथा को कथाभास माना है। इसी तरह से बाद के विद्वानों ने भी विशुद्धरूप से वाद कथा को ही मुख्य रूप से अपनाया और शेष कथाओं का समयानुसार विशेष परिस्थिति में प्रयोग किया है।

साहित्य में विस्तार के साथ कथा के स्रोत प्राप्त होते हैं।

कथा को ग्रहण करने के अधिकारी के विषय में भी विस्तारपूर्वक न्याय-दर्शन में बतलाया गया है कि कथा को ग्रहण करने वाला जो अधिकारी है, वह प्रमत्त न हो, श्रवणपटु हो, नियमबद्ध हो और निरन्तर गुरु के समीप बैठ करके अध्ययन में संलग्न हो विचार करके ही विषयवस्तु का उपस्थापना करे।

इस इकाई में कथा के स्वरूप और प्रकार का विस्तृत अध्ययन करने के उपरान्त इससे सम्बन्धित आगे दिये गये बोध-प्रश्नों के उत्तर दे पाने में आप समर्थ हो सकेंगे।

4.4 पारिभाषिक शब्दावली

1. **उपस्थापना**- प्रस्तुतीकरण।
2. **मुमुक्षु**-मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाला।
3. **अपलाप -** व्यर्थ की बातें बोलना।
4. **प्रमत्त**- पागल भांति व्यवहार करना।
5. **अपसिद्धान्त**- सिद्धान्त के विपरीत कथन कर देना।
6. **ब्रह्मवेत्ता**- ब्रह्म को जानने वाला।
7. **ब्रह्मनिष्ठ**- ब्रह्मप्राप्ति में लगा हुआ।
8. **सर्वशास्त्रविद्**- सम्पूर्ण शास्त्रों को जानने वाला।

4.5 सन्दर्भग्रन्थ

1. पुस्तक- भारतीय दर्शन का इतिहास लेखक- आचार्य बलदेव उपाध्यक्ष, प्रकाशन- चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, प्रथम संस्करण।
2. पुस्तक- छान्दोग्योपनिषद्, प्रकाशन- गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. श्रीकेशवमिश्र की तर्कभाषा, सम्पादक- बदरीनाथ शुक्ल, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1968 ई0।
4. गौतमकृत न्यायदर्शनम्, लेखक- प्रो. अनन्तलाल ठाकुर, प्रकाशन-मिथिलाविद्यापीठ, संस्करण 1967 ई0
5. पुस्तक- न्याय-दर्शन, सम्पादक- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशन- संस्कृति संस्थान, बरेली उत्तर-प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1964 ई.

4.7 बोध-प्रश्न

1. भारतीय-दर्शन के सम्प्रदाय का संक्षेप में उल्लेख करिये।
2. कथा का अर्थ और परिभाषा का उल्लेख करिये।
3. दार्शनिक स्रोतों में कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।
4. साहित्यिक स्रोतों में कथा की संकल्पना पर टिप्पणी लिखिये।
5. कथा के प्रकार का विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।
6. कथा को जानने वाले अधिकारी की योग्यता क्या-क्या होनी चाहिये ? स्पष्ट करिये।